घड़ी में सवा छह बजे देखकर कपूर साहब ने तीसरे और चौथे पृष्ठ के विज्ञापनों पर 'फाइनल ओ. के.' का निशान लगाकर उन्हें एक तरफ फेंका और फटाफट पहले और छठे पृष्ठ के विज्ञापनों का हिसाब लगाते हुए एक डमी बना डाली. फिर अपने टीन के केबिन से ही आवाज लगाई, "वर्माजी, आज पहले पेज पर एक तीन कॉलमवाला विज्ञापन है और छठे पर आपको डेढ़ कॉलम से अधिक जगह नहीं मिलने वाली. सुना मालिक, वर्माजी... वर्माजी!"

केबिन के उस पार पुराने रद्दी के अखबारों के ढेर, टूटे हुए बॉक्सों और जंग लगी अलमारी से घिरे छोटे-से कमरे में बैठे हुए रमेश कुमार ने झल्लाते हुए चीखकर कहा, "कपूर साहब, वर्माजी अभी आये ही नहीं हैं और आप सारे प्रेस को सिर पर उठाये हुए हैं. दूसरों को तो काम करने दें." अपने आगे रखी समाचार एजेंसी की दूसरी तरफ डालते हुए वह बड़बड़ाने लगा, "ये दोनों पंद्रह साल से यहां एक साथ सिर खपा रहे हैं... रहते भी एक ही कालोनी में आमने-सामने हैं, लेकिन दस मिनट कोई दिखाई न दे, तो चैन नहीं मिलता. पता नहीं लोगों में ऐसी दोस्ती कैसे हो जाती है!"

कस्बे के अखबार का दफ्तर. शायद परचूनी की दुकान से भी बदतर होता है. चारों तरफ काली स्याही, काले कागज, विज्ञापनों और चर्चित नेताओं अथवा फिल्मी अभिनेताओं के घिसे-पिटे ब्लॉक, तख्तनुमा टेबल, एक-हत्था टूटी कुरसियां, किनारे से टूटा हुआ टेलीफोन, जिसका तार ऐसा गंदा जैसे किसी ने तेल पोतकर मिट्टी लगा दी हो और सामने दीवारों पर सरकार अथवा पान भंडारवाले का कलैंडर. केबिन तो बस कहने के लिए है, इसलिए रमेश की बड़बड़ाहट के बीच कपूर साहब की कुर्सी खिसकने की आवाज आयी और वह अपना चश्मा हाथ में लिये-लिये बाहर निकल आये, "बच्चूजी, तुम्हें यहां आये अभी तीन महीने भी पूरे नहीं हुए हैं. कालेज से निकलकर सीधे आये हो न, इसलिए गहरी दोस्ती का मतलब समझने के लिए जरा बाल सफेद करने पड़ेंगे. लेकिन मेरी समझ में नहीं आता... वर्माजी आये क्यों नहीं अब तक? प्रेस की घड़ी तो ठीक है न? वरना इतने सालों में मुझे एक भी दिन याद नहीं पड़ता, जब ठीक छह बजे वर्माजी की साइकिल प्रेस के दरवाजे पर न पहुंच जाती हो. अपना वह चायवाला रामचंदर तो उन्हें देखकर ही रोज अपनी पुरानी सहारा घड़ी मिलाता है. वह भी पगला है... कहता है... पंटायर की घड़ी तो मशीन है, कभी भी गड़बड़ा सकती है. उस पर क्या भरोसा करना! वर्माजी ईमानदार आदमी हैं और वक्त के पाबंद, उन पर भरोसा करना कहीं अधिक अच्छा है!"

रमेश ने बालपेन मेज पर पटकते हुए कहा, "वाह कपूर साहब, मैंने आपकी चीख-पुकार से बचने के लिए बताया कि

कचरे का रतन

• आलोक मेहता

वर्माजी नहीं आये हैं, तो आप यहीं आकर रामायण सुनाने लगे. अगर आपको श्रोता चाहिए तो चलकर चाय पिलाइए और फिर सुनाइए वर्माजी की गाथा."

"तुम्हें चाय पीनी है तो आओ, वहीं बाहर रामू की बेंच पर बैठकर पीते हैं."

"लेकिन कहीं सेठजी आ गये तो . . .?"

"हां, सेठजी आ गये तो क्या कर लेंगे? . . फांसी पर लटका देंगे? . . . तेरह सौ रुपल्ली में 8–10 घंटे तक कलम रगड़ने वाला एम. ए. पास नौजवान इतनी आसानी से उन्हें कहां मिल जायेगा? चलो आओ." बाहर निकलते हुए कपूर साहब ने अपना भाषण जारी रखा, "यहां तो सब भाग्य के फेर में फंसकर आ गये हैं, वरना वर्माजी को ही देखो न, हीरा आदमी है हीरा. चार घंटे में पूरा पहला पेज यानी आठ कालम लिखकर फेंक देता है. टेलीफोन पर कोई खबर आये तो नोट नहीं करता, पूरी सुनने के बाद अक्षरशः वहीं कागज पर उतारकर रख देता है. फिर कविता, कहानी भी बढ़िया लिखता है. . . लेकिन घर न छोड़ पाने की मजबूरी में 15 सालों से चार सौ रुपल्ली में यहां जान खपा रहा है. कहीं दिल्ली-बंबई में होता, तो अब तक ढाई-तीन हजार रुपये महीना और शायद संपादक का पद भी मिल जाता . . . । . . . और एक मैं हूं, पूरा गधा! . . एक ही सेठ से बंधे रहने के लिए तीन सौ रुपये में 15–20 हजार के विज्ञापन अखबार के लिए जुटा देता हूं. दूसरी तरफ ये हैं तुम्हारे संपादकीय विभाग में दिन भी इंटरव्यूवाले मालिक के दो दलाल-मेहता और जैन. काम धेले का नहीं करेंगे. . बाहर से आये डाक के समाचारों को ऊपर-नीचे काटकर प्रेस में भेज दिया और सरकारी एजेंसी से आये लेखों को बीच पेज पर और टिका दिया. लेकिन समाचार-मिलों और अफसरों या नेताओं की चापलूसी कर सेठ के काम निकलवाते हैं और मुझसे ज्यादा कमा लेते हैं, कमीशन, इंटरटेनमेंट, एक्सपेंडीचर जैसे झूठे बिलों के बल पर."

इसी बीच रामू, चायवाले की झुग्गी से बाहर पड़ी बेंच पर आ गयी और उन्हें देखते ही रामू ने छोकरे से कहा, "साब लोगों को पानी दे, साफ गिलास में. चाय के साथ मठरी या समोसा कुछ दे दूं, कपूर साहब?"

"सुबह के बने बासी समोसे खिला-खिलाकर इन सबके पेट का कबाड़ा तो तुमने कर दिया रामू. अब हमारे इस भाई जैसे रमेश की जिंदगी मत खराब कर." कपूर साहब ने प्यार-भरी डांट के साथ कहा.

रमेश मन ही मन सोच रहा था कि आज चाय और मठरी के बदले दो घंटे की माथापच्ची गले पड़ गयी है. लेकिन काम सीखना है, तो वर्माजी और कपूर साहब का चेला बने बिना स्थायित्व कुछ नहीं आनेवाला है. इसलिए प्यारे गोल्ड मेडलिस्ट, मैडम की आगामी बैठकों का मंगलसूत्र बनवाने के लिए अपना स्वभाव बालीं-भारी जताने के तर चुपचाप सुन ले.

यही विचारकर रमेश ने मक्खन के पैकेट का रैपर खोलते हुए पूरे का पूरा कपूर साहब पर लगा दिया, "हां, कपूर साहब, आप तो वर्माजी के दायें ही नहीं बड़े भाई जैसे भी हैं. वह तो सिटी रिपोर्टिंग में काम साथ होने के बाद आपकी इतनी तारीफ करते हैं कि मुझे लगता है, आप आदमी नहीं देवता हैं. और इधर आप वर्माजी की लेखनी की सफलता के एक-एक सूत्र जानते हैं. कुछ टिप्स देकर बालक का कल्याण कर दीजिए."

अपनी तारीफ से गदगद होकर कपूर साहब ने पुराने घाघ होने का रोब जमा करके, स्वर में मिठास लाते हुए कहा, "हां-हां, क्यों नहीं, तुम तो मेरे बेटे की उम्र के हो. . . और कोई भी बाप नहीं चाहता कि उसके बच्चे उसकी गलतियां दोहराकर ठोकर खायें. इसलिए पहले ही आगाह कर देते हैं. हमें भी बड़े-बूढ़ों ने बड़ी हिदायतें दी थीं. लेकिन जवानी का गर्म खून था और यह अखबार नया. हम बड़े-बड़े सपने बुनने लग गये और जिंदगी की जितनी सीमायें डोर थी, उसे ढीली करते-करते स्वप्निल पतंगों को इतना ऊपर उड़ा दिया कि अब डोर भी वापस नहीं लौट सकते. . . और पतंग का तो पता ही नहीं, हवा में है या कट गयी! . . . खैर, इस समय तुम वर्मा के बारे में जानने को अधिक लालायित हो, इसलिए अपने राम की कहानी फिर कभी." यह कहकर कपूर साहब ने एक सिगरेट सुलगाई और उसे मुट्ठी में दबाकर एक लंबा-सा सुट्टा लगाया और सिर ऊंचा करके धुएं के गोल-गोल छल्ले छोड़ते हुए आंखें मूंदकर जैसे किसी और दुनिया में ही खो गये.

▣

"यह वर्मा, जिसे तुम हमेशा सादा खादी कुर्ते-पाजामे में देखते हो और शायद कुर्ते की बांहों में कभी उधड़ी हुई सिलाई या पिगड़ा भी तुम्हें दिख जाता होगा. . . जिसकी साइकिल भी उसकी नौकरी जितनी पुरानी है और उसके ट्यूब-टायर में भी कई पिगड़े लगे होते हैं. . . शादी किये बिना ही जिस पर गृहस्थी का बड़ा भारी बोझ है, विधवा मां और तीन अध-बूढ़ी कुंवारी बहनों के अलावा बाप के जमाने के कर्जों का बोझ, जिसकी कमर चालीस वर्ष में ही टेढ़ी कर चुका है, उसकी हालत हमेशा शुरू से ऐसी नहीं थी.

उसका भी एक जमाना था, सचमुच स्वर्णिम युग की तरह. मुझे तो वह अब सपना-सा ही लगता है. तब मैं बी. कॉम. फाइनल कर रहा था और नया सत्र आरंभ होने के तीन-चार महीने बाद ही कालेज के लड़के-लड़कियों की जबान से बस एक नाम की चर्चा सुनने को मिलने लगी थी—रमेश वर्मा की. वाह क्या स्टूडेंट है. . . फर्स्ट ईयर में ही स्टेज पर वह नक्शा

जमा रहा है कि अच्छे-अच्छों की छुट्टी कर दो! तुलसी जयंती पर मानस की इतनी अच्छी व्याख्या की कि वाइस-चांसलर वाजपेयीजी का भाषण भी फीका हो गया. तिलक जयंती आयी, तो स्वतंत्रता और प्रजातंत्र पर इतना धाराप्रवाह बोला कि चीफ गेस्ट शिक्षा मंत्री ने भी बाद में खड़े होकर तालियां बजाईं और बधाई दी. दिल्ली में तो उसे पं. नेहरू के हाथों से पुरस्कार मिला, जिसकी फोटो आज भी वर्मा के घर की सीलनभरी दीवार पर लगी हुई है. दूसरे फोटो और सर्टिफिकेट तो दो-चार साल पहले वर्मा ने [illegible] में भरकर आग में झोंक दिए.

क्यों? यह बात बाद में. असल में रत्नेश को बचपन से खूब लाड़-प्यार, सुख-सुविधाएं और प्रोत्साहन मिले थे. पिता शिव बहादुर वर्मा ने अपनी जवानी के दिनों डाक्टरी से . . . पैसा कमाया था. जब वह अपनी क्लिनिक से आते थे, सारी जेबें नोटों से भरी होती थीं और उनका कायदा था. . . लक्ष्मी का हिसाब क्या रखना, जितनी कृपा करे उतना खूब भोगो! इसलिए बचपन से रत्नेश के लिए इतने खिलौने आते कि उसके कमरे में पैर रखने की जगह नहीं होती. अलग से ट्यूटर घर पर पढ़ाने आते. इसी कारण हिंदी-अंग्रेजी दोनों भाषाओं पर उसका अच्छा अधिकार हो गया.

▣

लेकिन हवा के झोंके की तरह बचपन के वे दिन दूर होते चले गये. रत्नेश को घर में एक नयी तरह की गंध महसूस होने लगी. तब वह हाई स्कूल में पहुंच गया था और पूरी की पूरी लाइब्रेरी चाट जाने की धुन में उसे दुनियादारी का ज्ञान भी बहुत हो गया था. पापा का देर से घर पहुंचना, फिर अपने कमरे में जाकर बैठ जाना. पहले कुछ नमकीन, पापड़ मंगवाना और वहीं ग्यारह-बारह बजे जाकर खाने को मुंह लेना. इस क्रम से लक्ष्मी जितनी तेजी से आ रही थी, जा उससे भी अधिक तेजी से रही थी.

खैर, हिसाब-किताब से रत्नेश को तब क्या मतलब हो सकता था—हां, सुबह-शाम की अशांति ने उसे अपना रास्ता स्वयं खोजने के लिए विवश-सा कर दिया था, और वह रास्ता उसे समझ में आ गया—देर रात तक घर से बाहर रहना, दोस्तों के साथ मिलकर पढ़ना और साहित्यिक-सांस्कृतिक गतिविधियों पर बहस करना. कालेज में प्रवेश मिलते ही उसे अपनी स्वतंत्रता बढ़ाने के अनेक रास्ते मिल गये. इसलिए घर से बेगाना हो, वह बेगाना में अनजाने चला चला गया. इसलिए पहली बात तो तुम भी यह गांठ में बांध लो कि कभी जिंदगी से तंग आ जाओ तो घबराकर पलायन करने के बजाय कुछ कर गुजरने के लिए जी-जान से जुट जाओ.

यों यह बात अलग है कि तुम्हारी मेहनत की सार्थकता एक हद तक भाग्य के साथ भी जुड़ी हुई है. तभी तो वर्मा ने तीन सालों में नाम तो उतना कमा लिया था, जो लोग दस साल में नहीं कमा सकते, लेकिन फाइनल की परीक्षा के समय ही उसके पापा को दूसरा हार्ट अटैक हो गया और उसे घर की तरफ ध्यान देने को विवश होना पड़ा. सो, फर्स्ट क्लास बनते-बनते रह गयी. बी. ए. में सेकेंड डिवीजन आने के बाद एम. ए. में हालत सुधारने की दिलासा सकते थे, लेकिन प्रीवियस के दौरान ही उसके पापा को तीसरा हार्ट अटैक भी पड़ गया और वह घर-बार और यह जुल्मी दुनिया रत्नेश के कंधों पर छोड़कर चले गये.

फिर भी भोली-भाली मां ने उसे ढाढ़स दिलाया, "बेटे हिम्मत न हारना. बस, सारी फिक्र छोड़कर एम. ए. कर ले, हमारे सारे संकट दूर हो जायेंगे. तब तक के लिए तो घर चलाने और तुम भाई-बहनों को पढ़ाने लायक पूंजी है मेरे पास. तुम कुछ बन गये, तो घर से रूठी लक्ष्मी फिर आ जायेगी."

रत्नेश सब कुछ सुनकर चुप लगा गया. वह जानता था, मां भोली है और उसने मेरी तरह बड़े-बड़े सपने देखे थे. मुझे तो सपना टूटने की आवाज सुनाई दे गयी है. मैं उसकी कड़वाहट मां को क्या बताऊं! मुझे अपना रास्ता खुद ही चुनना होगा. यही सोचकर रत्नेश ने दिन में पढ़ाई करने और शाम को दैनिक 'नव-भारत' के स्थानीय संवाददाता पं. दिनेश तिवारी से पत्रकारिता सीखने का निश्चय किया. प्रतियोगिताओं में विजयी होने के समाचार लेकर वह कई बार तिवारी से मिल चुका था और वह उससे बहुत स्नेह रखते थे. तब उन्हें मुफ्त में ऐसा योग्य शिष्य मिलने का अवसर मिला तो उन्होंने तुरंत हां ही कर दी. पंडितजी अपना काम का [illegible] जमाकर रात नौ बजे तक अपने दफ्तर में घुसते थे. इसलिए रत्नेश तब तक अखबार पढ़ता या टेलीफोन पर आनेवाले समाचार नोट करता रहता, और छोटी-मोटी खबर तैयार करके रख देता.

▣

तिवारीजी अपनी मौज के रंग में दफ्तर पहुंचते. अपने शिष्य को एक-दो रिपोर्ट लिखने के निर्देश देते और फिर फटाफट काम में जुट जाते. बीच में दो-तीन बार शिष्य को सामने की दुकान से चाय मंगवाने की व्यवस्था करने का निर्देश दिया जाता. कोई बात निकल आने पर सिगरेट के छल्लों के साथ किसी नेता या अधिकारी से हुई मुठभेड़ का किस्सा सुना दिया जाता, और दो घंटे में सारा काम निपटाने के बाद रत्नेश की लिखी रिपोर्ट पर निगाह डालते.

जानते हो, तुम्हें तीन महीने बाद ही दूसरी बार अपनी रिपोर्ट लिखने में तकलीफ होने लगती है और बेचारे रत्नेश को दो-दो बार लिखी और सुधारी गयी लंबी-लंबी रिपोर्ट तिवारीजी रात के बारह-एक बजे फाड़कर फेंक देते और नये सिरे से लिखने का आदेश देते! लेकिन मानना पड़ेगा . . . गजब का धैर्य था और है रत्नेश में. उसने कभी आनाकानी नहीं की. है आज की पीढ़ी में इतना धैर्य कहीं?

[illegible] के इन्हीं दिनों में कॉफी-हाउस में मैंने उसे झकझोरा, "कहो भाई रत्नेश, कुछ करने का इरादा है?" तब मेरा रत्नेश से थोड़ा-बहुत परिचय था और कामर्स का स्टूडेंट रहने के नाते शायद मैं उसकी निगाह में मनीमैन से अधिक नहीं था. यों मैं एक फर्म में इसी तरह का पार्ट-टाइम काम भी कर रहा था. इसलिए उसने हंसकर कहा,

"क्यों मजाक करते हो बड़े भाई, क्या कहीं मुनीमगीरी दिलवाओगे?" पहले तो मुझे थोड़ा गुस्सा आया कि एक तो साले के घाव के लिए मरहम बना रहा हूं और यह उल्टा मेरे घाव पर नमक छिड़क रहा है! . . .जाये भाड़ में! फिर ख्याल आया. . .बेचारा परेशान है और बड़ा भाई भी तो कह रहा है.

सो, गुस्से को काबू में रखकर हमने रत्नेश से कहा, "कभी-कभी मुनीम की पहुंच प्रधानमंत्री तक होती है. उमाशंकर दीक्षित भी पं. नेहरू के मुनीम कहलाया करते थे. इसलिए यह बात छोड़ो. . .कहो तो तुम्हारी चिंता का उपाय बता दूं?"

रत्नेश के हामी भरने पर मैंने यह रहस्योद्घाटन किया, "सेठ धनवारीलाल गोयल चार लाख रुपया लगाकर दैनिक अखबार निकालने की योजना बना रहा है. मेरे पास उसका एक ऑफर भी है. . .अखबार तीन-चार महीने बाद ही निकल जायेगा. . .अगली 26 जनवरी को. कहो तो अपनी नौकरी के साथ तुम्हारा भी चक्कर चलवा दूं?"

रत्नेश सामने रखी गर्म काफी को एक ही घूंट में पी गया और मेरा हाथ पकड़कर बोला, "माफ करना कपूर भाई, मैंने आप पर व्यंग्य कस दिया था. आप तो मेरी डूबती नाव बचाने आये हैं. लेकिन सुना है, सेठ धनवारीलाल बड़ा कंजूस आदमी है. फिर उसका तो ट्रांसपोर्ट का धंधा है, अचानक अखबार के घाटे का धंधा वह क्यों कर रहा है?"

मैंने कहा, "रत्नेश, डेढ़ साल तक 'नव भारत' के दफ्तर में तुम बैठे हो और अब तक प्रेस का यह चक्कर नहीं समझे? यह भी मुझ मुनीम से समझोगे? अरे प्यारे भाई, कस्बों में नेतागिरी और अखबारबाजी से बढ़कर अच्छा धंधा और क्या हो सकता है. . .हर तरह से चांदी ही चांदी. अखबार की तोप पीछे हो तो हर काला धंधा चल सकता है!"

रत्नेश के पास विकल्प ही क्या था, जो इंकार करता. और इस तरह हम दोनों की दोस्ती हो गयी. कॉफी-हाउस में बैठकर अखबार की भावी रूपरेखा ऐसे बनाते रहे, जैसे हमारी दौलत और इज्जत सब कुछ उसमें लगनेवाली है. धंधा के पहले से हम दोनों को रख लिया गया, लेकिन प्रेस के भारी खर्च और शुरू के घाटे का हिसाब दिखाकर सेठ ढाई-ढाई सौ रुपये से अधिक देने को तैयार नहीं था. रत्नेश को अपनी मां-बहनों की चिंता थी और मैं दो-तीन जगह की मौसमी मुनीम-गिरी से बचने के चक्कर में था. सो, हमने आंख मीचकर शर्तें मान लीं. वैसे, अब हम तुम्हें यही सलाह देंगे कि कभी आंख मीचकर किसी सेठ की शर्तें मत मानना, वरना पछताओगे. हमारी तरह ही सेठों की भी कुछ मजबूरी होती है, उन्हें भी भुनाना चाहिए.

तीन-चार साल बाद आंख खुली तो देर हो चुकी थी. सूरत-शक्ल और पैसे के अभाव में रत्नेश की बहनों की शादी टलती गयी और उम्र तो बढ़नी ही थी. बहनों के घर में बैठे रहते रत्नेश अपने लिए बहू लाने की सोच भी नहीं सकता था. बड़ी बहन के हाथ पीले करने के लिए रत्नेश ने सेठ से पंद्रह हजार का कर्जा मांगा, तो सेठ ने पहले टाला, फिर प्रेस के घाटे का हिसाब बताया, तो कभी कुछ मजबूरी दिखायी. बाद में किसी से यह कहते भी सुना गया—"मैं इतना पागल नहीं, जो पंद्रह हजार दे दूं. कल यह काम छोड़कर चला जायेगा, तो वसूल कैसे करूंगा? अब तो इसके पास अपना मकान भी नहीं. . .बाप ने उसे पहले ही गिरवी रख दिया था. उसे भी देर-सबेर इन्हें खाली करना है."

रत्नेश यह सुनकर बहुत भड़का था, लेकिन वही मजबूरी उसे मुंह पर ताला लगाये रखने के लिए विवश करती रही. उसे कुछ लोगों ने प्रलोभन दिये—रिपोर्ट में हेर-फेर करने पर मिल-मालिकों या अन्य अफसरों से हर महीने कुछ पैसे दिलवाने के, जिन्हें रत्नेश कभी स्वीकार नहीं कर सकता था. हां, वैसे यहां यह बात भी साफ कर दूं कि दफ्तर में मैं शुरू में उसे 'वर्माजी' कहकर बुलाता था ताकि सेठ और बाहर के लोग भी उसकी इज्जत करें और इज्जत से बुलायें. बस, यही इज्जत लेकर हमने जिंदगी काट दी है और बाकी भी काट देंगे. तुम वर्माजी से मन लगाकर काम सीखो, चक्कर चलाओ, तुम्हारी मजबूरियां भी नहीं हैं. . .कहीं दिल्ली-बंबई के अखबार में जम जाओ. लेकिन याद रखना, कभी अपनी इज्जत का सौदा मत होने देना. वर्मा का चेला बनकर. . .

■

"कपूर साहब, कपूर साहब!" दूर से चिल्लाते हुए चपरासी के नहीं पहुंचने से उनका वाक्य बीच में ही रह गया. हड़बड़ाकर उठ बैठे, जैसे ध्यान टूटा हो. बोले, "क्या हुआ रामदीन?"

रामदीन तब तक पास आ चुका था और उसकी आंखों से अविरल आंसू टपके जा रहे थे. कपूर साहब ने घबराकर पूछा, "क्या हुआ? कुछ बोलो तो सही!"

बिलखते हुए रामदीन बोला, "कपूर साहब! वर्मा जी!"

"क्या हुआ बोलता क्यों नहीं. . .क्या हुआ रत्नेश को?"

"रवींद्र नगर चौराहे के पास वर्माजी की साइकिल एक बस से टकरा गयी और वहीं उनका सिर फट गया. डाक्टर ने वहीं मरा घोषित कर दिया बाबू. अभी-अभी ज्ञानप्रकाशजी को पास फोन आया है."

"नहीं नहीं, यह कैसे हो सकता है!" और कपूर साहब तेजी से पूरी बात समझने दफ्तर की तरफ भागे. रात की ड्यूटी वाले दूसरे उप-संपादक ज्ञानप्रकाश भी कमरे से आंखें पोंछ रहे थे. बोले, "सचमुच, कपूर साहब, आपका दोस्त बेवफा निकला!" कपूर साहब सकते में आ गये. तेजी से उठे और अपनी साइकिल उठा दरवाजे की तरफ बढ़े. मैं भी दरवाजे तक पहुंचा कि सामने सेठ धनवारीलाल टकरा गये. बोले, "ए रमेश, तुम कहां जा रहे हो? मैं अस्पताल से ही आ रहा हूं. अब वहां भीड़ बढ़ाने से क्या फायदा? जानेवाला चला गया, लेकिन कल का अखबार तो निकलना है. . .कपूर तुम विज्ञापन तो पेज पूरे होने दो? . . .तो तुम जाओ, रमेश को आज पहला पेज पूरा संभालने दो! डाक एडीशन लेट हो गया, तो दो-चार हजार का घाटा और हो जायेगा."

बस, न मेरे कदम आगे बढ़ पाये और न पीछे! □

☉ ट्युनिशर स्ट्रासे 3/1606, 5 कोलोन 51. (प. जर्मनी)